अध्याय -41

प्राणियों का घरेलूकरण (ग्राम्यन), संवर्धन एवं आर्थिक महत्व

(Domestication, Culture and Economic importance of Animals)

जन्तु प्रजाति को उसकी मानव के लिए उपयोगिता की दृष्टि से मनुष्य द्वारा पालतू बनाने को जन्तुओं का **घरेलूकरण** या **ग्राम्यन** (Domestication) कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी भी प्रजाति को उसकी खाद्य, उत्पादन में वृद्धि, मानव उपयोग के अन्य उत्पाद व उप-उत्पाद जैसे चमड़ा, ऊन, खाद इत्यादि उपयोगी पदार्थों की प्राप्ति के स्रोत के कारण, मानव प्रबन्ध के अन्तर्गत लाने को **ग्राम्यन** या **घरेलूकरण** कहते हैं।

मानव सम्यता के आदिकाल में ही सम्भवतः जन्तुओं का ग्राम्यन शुरू हो चुका था। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जन्तुओं के शिकार करने तथा उनको संवर्धित कर उनका उपयोग करने अथवा उन्हें पालतू बनाकर उनसे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथा योग्य उपयोग करता रहा है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव ने कई उपयोगी व लाभदायक जन्तुओं का सुव्यवस्थित एवं उन्नत वैज्ञानिक तकनीक अपनाते हुए, उत्पादन करना प्रारम्भ किया है, जिसे संवर्धन कहा जाता है। मानव के लिए उपयोगी प्रमुख जीवों के संवर्धन का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

I. कुक्कुट या मुर्गी पालन

(Poultry Farming)

मुर्गे प्राचीन समय से ही पालतू जन्तुओं के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। बीसवीं शताब्दी में मनुष्य की स्वाद प्रवृत्ति तथा पौष्टिक भोजन की आवश्यकता ने मुर्गी पालन को एक महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग का दर्जा दिया है। मुर्गी अपने अंडे तथा वयस्क के मांस दोनों ही रूपों में पौष्टिक भोजन प्रदान करती है। इनकी इसी उपयोगिता के कारण वैज्ञानिकों का ध्यान मुर्गों के प्रजनन, अंडज उत्पत्ति (Hatching) तथा पालन-पोषण की नई तकनीकों के अनुसंधान की ओर आकर्षित हुआ है। भारत जैसे देश की भारी जनसंख्या को उचित पौष्टिक आहार की पूर्ति के लिए अंडों का प्रयोग बढ़ाना आवश्यक था। मुर्गी पालन उद्योग की सफल व्यवस्था के लिए मुर्गी पालन के स्थान, मुर्गों के स्वभाव, प्रजाति (Breed) तथा इनके प्रजनन व पालन पोषण का उचित ज्ञान होना आवश्यक है।

कुक्कुट पालन में उपयोगी पक्षी

(Birds useful in Poultry)

पक्षियों की कई प्रजातियों को कुक्कुट पालन हेतु उपयोग में लिया जाता है जिनमें मुख्य प्रजातियाँ निम्न हैं-

(i) मुर्गी प्रजातियाँ (Breeds of fowl) - भारत में घरेलू मुर्गी (Domestic fowl), *गैलस डोमेस्टिकस (Gallus domesticus)* को मुख्यरूप से पाला जाता है। दो प्रकार की मुर्गियों को कुक्कुट पालन हेतु उपयोग में लाया जाता है।

(अ) पारम्परिक या देशी नस्लें (Indigenous or Desi Breeds) - इनमें असील (Aseel), ककरनाथ (Kakarnath), ब्रह्मा (Brahma), बसरा (Busara), घैगस (Ghagus), चिटगांन (Chittagong) इत्यादि नस्लें शामिल हैं। उपरोक्त में से असील नस्ल को मुर्गों की लड़ाई (Cock-fighting) के लिए गेम बर्ड (Game bird) की तरह पाला जाता है।

(ब) विदेशी नस्लें (Exotic Breeds)- इनमें अधिकतर यूरोपियन नस्लें शामिल हैं। विदेशी नस्लों में सफेद लैगहॉर्न (White leghorn), प्लाइमॉथ रॉक (Plymouth rock), रोडे आइलैण्ड रैड (Rhode island red), न्यूहैम्पशायर (New hampshire) इत्यादि प्रमुख हैं। ये नस्लें उन्नत नस्लों की श्रेणी में आती हैं।

(ii) बतख (Ducks) - बतखों *ऐनास प्लेटीरिन्कोज (Anas platyrhynchos)* से भी अण्डे व माँस प्राप्त किया जाता है। भारत में कुल कुक्कुटों की जनसंख्या (Poultry population) का 6 प्रतिशत योगदान बतखों का हैं। ये सामान्यत: भारत के दक्षिणी एवं पूर्वी प्रदेशों में पाई जाती हैं। भारतीय नस्लों में भारतीय रनर (Indian runner), सिहलेट मेटा (Syhlet meta) व नागेश्वरी (Nageshwari) प्रमुख हैं, जबकि मस्कोरी (Muscori), पेकिन (Pekin), आयलेसबरी (Aylesbury), कैम्पबैल (Campbell) इत्यादि महत्वपूर्ण विदेशी नस्लें हैं।

(iii) टर्की (Turkey) - *मिलिएग्रिस गेलोपावो (Meleagris gallopavo)* टर्की (Meleagris) हाल के कुछ वर्षों में ही पालतू बनाया गया पक्षी हैं। ब्रिटिश व्हाइट (British white), नार्फोल्ड (Narfold), ब्रॉड ब्रेस्टेड ब्राँज (Broad breasted bronze), बेल्ट्सविले स्मॉल व्हाइट (Beltsville small white) इत्यादि इसकी प्रमुख नस्लें हैं।

मुर्गीपालन में प्रयुक्त मुर्गी की कुछ नस्लें माँस उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं जिन्हें **ब्रॉयलर्स** (Broilers) कहा जाता है, जैसे- प्लाइमॉथ रॉक। इसके विपरीत अन्य नस्लें उच्च अण्डोत्पादन दर दर्शाती है जो अच्छी गुणवता के अण्डे उत्पादन हेतु अधिक उपयुक्त हैं। सामान्यत: एक मुर्गी वर्ष में 60 अण्डे देती हैं, किन्तु उन्नत किस्म की मुर्गियाँ प्रतिवर्ष 240 तक अण्डे देती हैं। प्रमुखत: अण्डे उत्पादन हेतु पालन की जाने वाली मुर्गियाँ **लेयर्स** (Layers) कहलाती हैं। मानव ने कृत्रिम चयन विधि द्वारा कई श्रेष्ठ एवं उन्नत किस्म की अण्ड उत्पादक तथा माँस उत्पादक किस्में विकसित करने में सफलता प्राप्त की हैं।

प्रजनन के लिए मुर्गे-मुर्गियों का चुनाव
(Selection of fowls for breeding)

यह जानना अति आवश्यक है कि प्रजनन के वास्ते किस प्रकार अच्छे मुर्गे मुर्गियाँ का चुनाव किया जाये। इसके लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. प्रजनन के लिए मुर्गे का चुनाव करना

मुर्गे का शरीर चमकीला, चौड़ा तथा गठीला होना चाहिये। उसकी आँखें चमकदार, चोंच छोटी और मुड़ी हुई, कलगी चमकदार, लाल तथा बढ़ी हुई, पीठ चौड़ी, त्वचा पतली और लचीली, पूंछ लम्बी तथा ऊपर की ओर मुड़ी हुई होनी चाहिये। अंग में किसी प्रकार का दोष न मालूम हो। वह देखने में चंचल हो तथा मुर्गियों की रक्षा के लिये सदा तैयार रहता हो। मुर्गा अच्छी प्रकार बांग लगाता रहता हो।

यदि उपर्युक्त गुण मुर्गे में हैं तो वह प्रजनन के लिए बहुत ही अच्छा रहता है।

2. प्रजनन के लिए मुर्गी का चुनाव करना

मुर्गी के शरीर का आकार अच्छा एवं बड़ा होना चाहिये। उसका सिर अच्छे आकार का तथा आँखें उभरी हुई होनी चाहिये। एक वर्ष कम आयु की परिपक्व मुर्गी का ही चुनाव करना चाहिये। मुर्गी अच्छे स्वास्थ्य वाली, तेज बढ़ने वाली, शीघ्र परिपक्व होने वाली तथा अधिक अंडे देने वाली होनी चाहिये। यदि मुर्गी अच्छे स्वास्थ्य वाली होगी तो उससे चूजे भी अच्छे उत्पन्न होंगे।

पक्षियों की संगम विधियाँ (Systems of Mating of Birds)

पेन मेटिंग (Pen Mating) - इस विधि में एक मुर्गे को एक दड़बे में कई मुर्गियों के साथ छोड़ दिया जाता हैं। प्रति 10 मुर्गी एक मुर्गा दड़बे में रख सकते हैं।

सामूहिक अथवा फ्लॉक मेटिंग (Flock Mating) - मुर्गियों के झुंड में कई मुर्गे छोड़ दिये जाते हैं। ऐसा करने से बहुधा मुर्गों में लड़ाई शुरू हो जाती हैं और बलिष्ट मुर्गा दूसरों को संगम नहीं करने देता और इस प्रकार प्रजनन में असुविधा हो जाती है। जहाँ कोई 'रिकार्ड' नहीं रखना हो, वहां यह विधि सुविधाजनक है।

स्टड मेटिंग (Stud Mating) - मुर्गे और मुर्गियों को अलग-अलग दड़बों में रखा जाता है और आवश्यकतानुसार मुर्गियों की संगम हेतु मुर्गे के दबड़े में छोड़ दिया जाता हैं।

आल्टरनेटिंग मेल्स (Alternating Males) - मुर्गी के झुंड में 2 मुर्गों से काम लिया जाता है, एक दिन एक मुर्गा झुंड के साथ छोड़ा जाता है और दूसरे दिन दूसरा। इस विधि से रिकार्ड रखने में असुविधा होती हैं।

प्रजनन विधियां
(Systems of Breeding)

अन्त: प्रजनन (Inbreeding) - एक ही जाति के समीप के रिश्तेदारों का संगम, उदाहरणार्थ भाई-बहन, पिता-पुत्री, माँ एवं पुत्र आदि। यह विधि ठीक नहीं है क्योंकि इससे नस्ल में कमजोरी आ जाती है।

लाईन प्रजनन (Line Breeding) - किसी एक पक्षी का

बार-बार उसके अच्छे गुणों के कारण 'इन ब्रीडिंग' विधि में काम लाने को लाईन ब्रीडिंग कहते हैं। इसका उद्देश्य एक खास गुण को जाति में स्थिर करना है। इस पद्धति में निकट के रिश्तेदार का परस्पर संगम नहीं कराया जाता है परन्तु दूर के रिश्तेदारों का प्रयोग किया जाता है।

बाह्य विनिमय (Outcrossing) - एक ही प्रकार के पक्षियों का, जिनके "विभेद" (Strain) अलग-अलग हों, संगम कराना "आऊट क्रॉसिंग" कहलाता हैं। उदाहरणार्थ यदि सफेद लैगहार्न की एक जाति में अधिक अण्डे देने की क्षमता है परन्तु अण्डे छोटे होते हों तो उसे उसी जाति के उन पक्षियों से संभोग कराना चाहिये जिसके अण्डे चाहे मात्रा में कम हों परन्तु बड़े होते हों।

विनिमय (Crossing) - विभिन्न जाति के पक्षियों का संगम कराना "क्रॉसिंग" कहलाता है। इस पद्धति से उपलब्ध पक्षी संकर या "हाईब्रिड" (Hybrid) कहलाते हैं। इनमें "संकर ओज" (Hybrid vigour) होता है।

ग्रेडिंग (Grading) - शुद्ध जाति के नर पक्षियों का अन्य जाति के मादा पक्षियों के साथ संगम कराना। जहाँ कोई भी शुद्ध जाति नहीं हो वहाँ इस प्रकार के निरन्तर प्रयोग से कुछ समय में प्राय: शुद्ध जाति प्राप्त की जा सकती हैं। आज के विकसित मुर्गी पालन में व्यावसायिक दृष्टि से संकर जाति के पक्षी ही पाले जाते हैं।

ऊष्मायन तथा अंडजोत्पति या स्फुटन (Incubation and Hatching) - कुक्कुट के अण्डों की ऊष्मायन अवधि प्रत्येक जाति के कुक्कुटों में भिन्न होती है, जैसे- मुर्गी 21 दिन, टर्की 28 दिन, बतख 28 दिन, जापानी बटेर 17-18 दिन।

ऊष्मायन के दौरान विभिन्न प्रक्रियाएँ पाई जाती हैं। मुख्य रूप से श्वसन, उत्सर्जन (Excretion), पोषण एवं रक्षण हैं। भ्रूण-बाह्य झिल्लियाँ, जो भ्रूण की देह से बाहर रहती हैं (उल्ब, जरायु, अपरा पोषिका) इन कार्यों को संभव बना देती हैं। इनमें से कोई भी भ्रूण-बाह्य झिल्ली चूजे का अंग नहीं बनती है।

भ्रूण विकास में महत्वपूर्ण घटनाएँ

अण्डा देने से पूर्व : निषेचन

अण्डा देने एवं ऊष्मायन के बीच : वृद्धि नहीं

ऊष्मायन के दौरान:

16 घंटे - चूजा भ्रूण का पहला चिन्ह

20 घंटे - कशेरुक दण्ड का प्रकटन

22 घंटे - सिर रचना की शुरूआत

24 घंटे - आँख रचना की शुरूआत

42 घंटे - हृदय की धड़कन की शुरूआत

62 घंटे - टांगों की रचना की शुरूआत

64 घंटे - पंखों की रचना की शुरूआत

पाँचवा दिन - जनन अंगों की रचना और लिंग विभेदन की शुरूआत

छठा दिन - चोंच रचना की शुरूआत

सत्रहवाँ दिन - चोंच वायु कोशिका की ओर मुड़ जाती है।

उन्नसवां दिन- - पीतक कोष (योक सैक) का देहगुहा में प्रविष्ट होना शुरू हो जाता है।

बीसवां दिन - पीतक कोषक देहगुहा में पूरी तरह से प्रविष्ट हो जाता है।

इन्नीसवां दिन - चूजे का अंडे से बाहर निकलना।

स्फुटन हेतु अण्डों का चयन - स्फुटन हेतु वांछित अण्डों का चयन सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए, क्योंकि किसी प्रकार अपसामान्यता होने पर स्फुटन-क्षमता (Hatchability) पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। स्फुटन हेतु अंडों का चयन करने के लिए कुछ गुण, आकार, रंग, रूप, खोल की गुणता ओर दोष परीक्षण द्वारा देखी गई भीतरी गुणता हैं।

कृत्रिम ऊष्मायन - यह कार्य ऊष्मायित्र (Incubator) द्वारा किया जाता है, जो अण्डे के स्फुटन के लिए अनिवार्य दशाएं प्रदान करता है। एक अण्डे में 21 दिन में चूजा बन जाता है। अण्डे को 18 दिन ऊष्मायित्र में और 3 दिन स्फुटन-उपकरण (Hatcher) में रखा जाता है।

कृत्रिम ऊष्मायन से लाभ

कृत्रिम ऊष्मायन के निम्नलिखित लाभ हैं:

(1) एक साथ काफी चूजे निकाले जा सकते हैं।

(2) अण्डों का स्फुटन आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

(3) संक्रामक रोगों से बचाव किया जा सकता है।

(4) चूजे निकालने का प्रतिशत अधिक हो सकता है।

(5) देखभाल और खर्च में कमी होती है।

अण्डे सेना तथा चूजा पालन (Brooding and Rearing) - अण्डे सेने को ब्रूडिंग तथा इन्क्यूबेटर में से चूजा प्राप्त होने के बाद उसे पालने की क्रिया को "रियरिंग" कहते हैं। दो प्रकार से चूजों को पाला जा सकता है-

प्राकृतिक ब्रूडिंग (Natural Brooding) - मुर्गी स्वयं इन्क्यूबेटर तथा ब्रूडर का कार्य करती है सामान्यत: एक मुर्गी 8-10

अण्डों में से अपने शरीर की गर्मी के प्रभाव से बच्चे निकाल सकती है।

कृत्रिम ब्रूडिंग (Artificial Brooding) - बिना मुर्गी की सहायता के चूजों के पालन-पोषण को कृत्रिम ''ब्रूडिंग' कहते हैं प्राकृतिक रीति की तुलना में कई लाभ हैं-

(1) वर्ष के किसी भी माह में यह कार्य हो सकता है। (2) अधिक संख्या में चूजे पाले जा सकते हैं। (3) सफाई, रोग आदि का पूरा प्रबन्ध हो सकता है। (4) तापमान नियन्त्रित किया जा सकता है। (5) आहार नियमानुसार दिया जा सकता है। (6) कुड़क मुर्गियों की आवश्यकता नहीं होती है।

ब्रूडर गृह (Brooder House) - चूजे प्राप्त होने से पूर्व ही ब्रूडर गृह तैयार होना आवश्यक है। इसमें वायु का पूरा प्रबन्ध हो, तापमान का नियन्त्रण किया जा सकता हो, बाहर के जानवरों से बचाव किया जा सकता हो, अधिक वेग की हवा/आंधी या शीत लहर से बचाव किया जा सकता हो आदि। बड़े ब्रूडर-गृह को छोटे-छोटे हिस्सों से विभाजित कर विभिन्न आयु के चूजे पाले जा सकते हैं।

फ्लोर ब्रूडर (Floor Brooder) - छबड़ी, जिसे दोनों ओर से चिकनी मिट्टी-गोबर के मिश्रण से लेप किया गया हो, अच्छे ब्रूडर के रूप में काम में लाई जा सकती है। इसी प्रकार लकड़ी के ब्रूडर, टीन या एल्यूमीनियम के ब्रूडर भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

चित्र 41.1 पिंजरा प्रणाली से मुर्गी पालन

बैट्री ब्रूडर (Battery Brooder) - सीमित स्थान में अधिक चूजे पालने के लिये बैट्री ब्रूडर प्रयोग में लाये जाते हैं। हैचिंग के बाद 4 सप्ताह तक इसमें चूजे पाले जाते हैं। यह विधि सस्ती नहीं है अत: अधिक प्रचलित नहीं है।''केज सिस्टम'' में पक्षी रखने हों तो उन्हें बैट्री ब्रूडर में पाला जाना चाहिये। बैट्री ब्रूडर में कई मंजिलें (Tiers) हो सकती हैं, इसमें एक ठण्डा स्थान भी होता है जहाँ चूजे आवश्यकता पड़ने पर जा सकते हैं।

बैट्री ब्रूडर में सबसे कम उम्र के पक्षी सबसे ऊपर की मंजिल में रखे जाते हैं। बैट्री ब्रूडर में आहार एवं पानी की व्यवस्था बाहर होती है जिस कारण बीट उसमें नहीं मिल पाने के कारण रोगों से बचाव होता है।

पिंजरा (Cage) प्रणाली द्वारा मुर्गी पालन - इस प्रणाली के विकसित होने से पूर्व ''डीप लिटर विधि'' द्वारा मुर्गी पालन किया जाता था। डीपलिटर विधि में एक बार में अधिक मुर्गियां नहीं पाली जा सकती थी क्योंकि इस विधि में प्रत्येक मुर्गी को लगभग तीन वर्ग फीट की आवश्यकता होती है तथा अधिक मुर्गियों के लिए बहुत बड़े मकान या मुर्गी फार्म की आवश्यकता होती है। विश्व के अनेक देशों में मुर्गी पालन आजकल ''डीप लिटर'' के स्थान पर **पिंजरों** में हो रहा है। ऐसा करने का मुख्य कारण बढ़ती हुई महंगायी है जिस कारण मुर्गी आवास पर व्यय में निरन्तर वृद्धि होती जा रही हैं (चित्र 41.1)।

पिंजरा (Cage) प्रणाली के लाभ

(1) कम स्थान में अधिक पक्षी- ''डीप लिटर'' पद्धति की तुलना में इसमें कम स्थान की आवश्यकता होती है, अर्थात् एक मुर्गी गृह में जहाँ हजार पक्षी पल रहे हों वहाँ दो से ढाई हजार तक पक्षी उसी स्थान में केज में पाले जा सकते हैं।

(2) रोग से बचाव- चूंकि मुर्गियाँ पिंजरे में रहती हैं अत: रोग पूरे मुर्गी समूह को ग्रसित नहीं कर पाता जो निश्चत ही लाभकर है।

(3) आहार मात्रा में कमी- ऐसा वैज्ञानिकों का मत है कि पिंजरे में पालने पर मुर्गी आहार कम खाती है।

(4) देख-भाल में सुविधा- चूंकि ''डीप लिटर'' प्रणाली में मुर्गियाँ स्थिर नहीं रहती, अत: इनकी देख-भाल में तथा निगरानी में कठिनाई रहती है। इस प्रणाली में निगरानी में सुविधा रहती है। यदि छंटनी करनी हो तो इस प्रकार की व्यवस्था में आसानी रहती है। दूसरी विधियों में समस्त मुर्गियों को पकड़ना पड़ता है जिस कारण ''स्ट्रेस'' होने से अंडा उत्पादन कम हो जाता है।

(5) श्रम में बचत- ऐसा माना जाता है कि केज प्रणाली में मुर्गी पालन में श्रम की कमी होती है अर्थात् एक व्यक्ति अधिक मुर्गियों की देख-भाल कर सकता हैं।

केज प्रणाली में प्रबन्ध व्यवस्था
(Management Tips for Cage Layers)

इस प्रणाली में डीप लिटर प्रणाली से भिन्न प्रबन्ध व्यवस्था की आवश्यकता होती है। कुछ मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है-

1. आहार व्यवस्था- पिंजरे के पक्षियों को आहार सदैव समय

पर प्राप्त होना चाहिये। एक घण्टा भी यदि आहार नहीं मिले तो उत्पादन कम हो जायेगा। अत: यह अनिवार्य है कि दिन में कम से कम तीन बार आहार दिया जाये, प्रात:, दोपहर, तथा सायंकाल। आहार नली का यदा कदा निरीक्षण करते रहना चाहिये।

2. जल व्यवस्था– इस प्रणाली में स्वच्छ जल हर समय उपलब्ध रहना चाहिये। पानी की नाली/बर्तन समय-समय साफ किये जाने चाहिये।

3. मुर्गी खाद व्यवस्था– केज की किस्म पर यह व्यवस्था निर्भर करती है। चूँकि केज व्यवस्था में केवल बीट ही इकट्ठी होती है अत: यह डीप लिटर की तुलना में गन्ध अधिक पैदा करेगी। समय समय पर इसे साफ करवाना आवश्यक है।

4. प्रकाश व्यवस्था– डीप लीटर प्रणाली के ही सिद्धान्त पर प्रकाश की व्यवस्था की जानी आवश्यक है। प्रकाश सर्वत्र होना चाहिये ताकि मुर्गी सुगमता से आहार उपयोग कर सके तथा उसकी किरणों का उत्पादन पर वांछित प्रभाव पड़ सके ।

5. अण्डा एकत्रण– दिन में कम से कम तीन बार अण्डा एकत्रण किया जाना आवश्यक है।

6. भवन निर्माण– पिंजरा प्रणाली की तुलना में केज प्रणाली हेतु भवन भी विशेष प्रकार का होना चाहिये। भवन की ऊँचाई इस पर निर्भर करेगी कि कितने मंजिल के पिंजरे लगाये जाने हैं, यदि दो मंजिल के पिंजरे बनाने है तो कम से कम 12 फुट ऊँचाई छत की होनी चाहिये, यदि तीन मंजिल के पिंजरे लगाने हों तो कम से कम 14 फुट ऊँचाई आवश्यक है। समतल छत (Flat roof) ठीक रहती है। यदि झोपड़ीनुमा छत बनानी हो तो साइड की ऊँचाई कम से कम 9-10 फुट होनी चाहिये।

भवन शुष्क स्थान पर बनाना चाहिये। भूमि की नमी बीट को नम करती रहेगी, कीड़े मकौड़े, अधिक पैदा होंगे तथा बीट शीघ्र नहीं सूखेगी।

कुक्कुट आहार (Poultry Food)

कुक्कुट आहारों को निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है -

(1) कुक्कुट आहार को अखाद्य से खाद्य रूप में बदलना

(2) कुक्कुटों की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करना

(3) वृद्धि, मोटा होने तथा जनन के लिए

(4) ऐच्छिक (Voluntary) तथा अनैच्छिक (Involuntary) कार्यों के लिए ऊर्जा प्रदान करना।

विभिन्न कुक्कुट आहार (Different Poultry Feeds)

(अ) कार्बोहाइड्रेट आहार (Carbohydrate Feeds) - मुर्गी आहार का यह 70-80 प्रतिशत भाग होता है। मुख्यत: ये हीट, एनर्जी तथा फैट के उत्पादन के प्रयोग में आते हैं। ये अन्य आहार की तुला में सस्ते है तथा सुगमता से मिलते हैं। कुछ प्रमुख स्रोत निम्न हैं:

मक्का (Maize) : मुर्गी आहार में इसका अधिकांश प्रयोग होता है। यह स्टार्च है तथा इसमें फैट मात्रा अधिक होती है।

गेहूँ (Wheat) : मक्का के बाद इसका दूसरा स्थान है। इसमें कैल्सियम कम परन्तु फॉस्फोरस अधिक होता है। विटामिन बी तथा ई का उत्तम साधन है। गेहूँ को अनेक प्रकार से मुर्गी दाने में काम में लाया जा सकता है जैसे गेहूँ की चापड़।

ओट (जई - Oats): इसमें लगभग 12% प्रोटीन, 10.6% फाईबर तथा 4.7% फैट होता है। इसको भी मुर्गी दाने में साबुत, पीसकर, दलिया कर दिया जा सकता है।

जौ (Barley) : इसे भी ओट (Oat) की तरह मुर्गी आहार में प्रयोग में लाया जा सकता है।

ज्वार (Sorghum): इसकी बनावट मक्का जैसी होती है परन्तु इसमें विटामिन ए नहीं होता। इसका उपयोग तभी लाभप्रद है जब गेहूँ, मक्का जई से यह सस्ता हो।

चावल (Rice): यह भी अन्य अनाजों की जगह प्रयोग में लाया जा सकता है। चूंकि इसका भाव अन्य अनाज की तुलना में अधिक रहता है, अत: इसका प्रयोग कम किया जाता है।

राब (Molasses) : यह गन्ने से शक्कर बनाने के बाद बचा हुआ पदार्थ है तथा अनाज के लगभग 5.10% भाग की जगह यह प्रयोग में लाया जा सकता है।

आलू (Potatoes) : वे आलू जो छोटे हों और मनुष्य के प्रयोग के काबिल न हो उन्हें उबाल कर मुर्गियों को खिलाया जा सकता है।

(ब) फैट फीड (Fat Feed) : फैट (चर्बी-वसा = Fat) : ये एनर्जी (ऊर्जा) के मुख्य स्रोत है, ये दो से पाँच प्रतिशत स्तर पर मिलाये जा सकते हैं। फैट द्वारा मुर्गी की आकृति में सुधार होता है, भूख बढ़ती है तथा आहार उपयोग मात्रा में बढ़ोतरी होती है जिस कारण शारीरिक विकास एवं अण्डा उत्पादन बढ़ता है। निम्न प्रकार के पदार्थ इस वर्गीकरण में आते हैं:

1. सोयाबीन तेल 2. मूंगफली का तेल 3. बिनौले का तेल
4. मक्का का तेल 5. व्हीट जर्म आयल 6. पशुओं की चर्बी
7. जमाये गये तेल।

(स) प्रोटीन फीड्स (Protein Feed) : - मुर्गी आहार का यह सबसे मूल्यवान भाग होता है। यह शारीरिक विकास एवं अण्डा

उत्पादन के लिये बहुत आवश्यक है।

जान्तव प्रोटीन फीड (Animal Protein Feed) : इसमें दूध, मीट स्क्रेप, फिश मील आदि हैं, इसमें खनिज तत्त्व अधिक होते हैं, विटामिन भी अधिक होते हैं।

शाक प्रोटीन फीड (Vegetable Protein Feed): इसमें मुख्य है सोयाबीन मील, कोर्नग्लूटीन मील, बिनौले की खल, मूंगफली की खल तथा अलसी की खल। सूरजमुखी की खल भी काम में लायी जा सकती है।

दूध (Milk) : यह प्रोटीन का अच्छा स्रोत है परन्तु महंगा होने के कारण प्रयोग सम्भव नहीं हैं।

मीट स्क्रेप (Meat Scrap): मुर्गी आहार में इनका प्रयोग प्रोटीन तथा खनिज पदार्थ प्राप्त करने के लिये किया जाता हैं।

फैदर मील (Feather Meal): इसमें 86-88% प्रोटीन है परन्तु आवश्यक ऐमीनो-एसिड की कमी है। इसका उपयोग आहार के प्रोटीन भाग का 10-20% किया जा सकता हैं।

पोल्ट्री ब्लड मील (Poulty Blood Meal): इसमें 65% प्रोटीन पाया जाता है तथा इसका प्रयोग प्रोटीन के स्थान पर कुछ अंश तक हो सकता है।

सोयाबीन आयल मील (Soyabean Oil Meal) : जहाँ सोयाबीन पैदा होता है वहाँ इसका सबसे अधिक उपयोग प्रोटीन प्राप्त करने के लिये होता है। भारत में मूंगफली की खल का ही प्रयोग अधिक होता है। परन्तु आजकल सोया मील का भी प्रयोग बढ़ गया है।

खनिज आहार (Mineral Meals)

कैल्सियम (Calcium) - इसके लिये चूना (Calcium carbonate) सबसे अच्छा स्रोत है। आयस्टर शैल, मारबल चिप्स से तथा अंडे के छिलकों से भी कैल्सियम प्राप्त हो सकता है।

फॉस्फोरस (Phosphorus) : यह बोनमील जो मुख्यत: ट्राई कैलसियम फॉसफेट (Tricalcium phosphate) होता है, उससे फॉस्फोरस के रूप में प्राप्त होता हैं।

मैंग्नीज (Manganese) : इसकी आवश्यकता केवल 50 ''पार्टस पर मिलियन'' के अनुपात से होती है। यह हड्डियों की बनावट तथा हैचिंग परिणाम के लिए आवश्यक है।

साल्ट (Salt) : साल्ट या सोडियम क्लोराइड स्वाद तथा पाचन क्रिया के लिए आवश्यक है। आहार में 0.5% के स्तर पर नमक डाला जा सकता है। इसी प्रकार आयरन, आयोडीन की भी आवश्यकता मुर्गी आहार में होती है।

मुर्गियों के सामान्य रोग (Common Diseases of Poultry) - मुर्गियों में होने वाली कुछ सामान्य बीमारियाँ निम्न है-

(i) विषाणु जनित रोग (Viral Diseases) - इनमें चेचक (Fowl pox), संक्रामक ब्रोन्काइटिस (Infectious bronchitis), लिम्फॉइड ल्यूकोसिस (Lymphoid leukosis) तथा रानीखेत रोग (Ranikhet disease) शामिल है। रानीखेत रोग मुर्गों का सर्वाधिक सामान्य रोग है जिसमें रोगी मुर्गियों को ज्वर व अतिसार हो जाता है। रोग की उग्रता बढ़ने पर चोंच से म्यूकस का स्राव, पंखों का लकवा तथा गोल-गोल चक्कर लगाने जैसे लक्षण प्रकट होते हैं।

(ii) जीवाणु जनित रोग (Bacterial Diseases) - इनमें फाउल कॉलेरा (Fowl Cholera), पुलोरम (Pullorum), कोराइजा (Coryza), माइकोप्लाज्मोसिस (Mycoplasmosis) तथा स्पाइरोकीटोसिस (Spirochaetosis) शामिल हैं।

(iii) कवक जनित रोग (Fungal Diseases) - एफ्लाटोक्सिकोसिस (Afltoxicosis), ब्रूडर न्यूमोनिया एवं एस्पर्जिल्लोसिस आदि।

यदि कोई भी संक्रामक रोग अधिक उग्र हो जाये तो रोगग्रस्त प्राणियों को मार देना ही उचित निर्णय माना जाता है। मुर्गी पालन के प्रबन्धन में व्यवसायी को सामान्य रोगों की जानकारी होना आवश्यक है ताकि मुर्गियों एवं मनुष्य के स्वास्थ्य को सुनिश्चित किया जा सके।

II. मत्स्य पालन

(Fish Culture, Pisciculture or Fisheries)

भारतवर्ष जैसे विकासशील देश में जहाँ दूध व मांस की प्रति व्यक्ति आपूर्ति बहुत ही कम है केवल अनाज के रूप में लिए जा रहे असंतुलित आहार के पूरक स्वरूप भोजन में मछली का महत्त्व बहुत ही बढ़ जाता है। अनुमानत: देश में मत्स्य-प्रोटीन (Fish protein) के आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रति वर्ष लगभग 1 करोड़ टन मछली की आवश्यकता है, जबकि इसका प्रति वर्ष उत्पादन लगभग 35 लाख टन है। मछली पालन तटीय राज्यों में मछुआरों व किसानों को आय व रोजगार प्रदान करती है। मात्स्यकी की बढ़ती मांग को देखते हुऐ इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए विभिन्न तकनीक काम में ली जा रही हैं जैसे - जलकृषि व मत्स्य पालन।

भारत में मत्स्य उत्पादन की क्षमता वाले अंत:स्थलीय जल का क्षेत्र लगभग 75 लाख हैक्टेयर है जो देश के कुल क्षेत्रफल का 2.34% है। **केन्द्रीय अत:स्थलीय मत्स्य शोध संस्थान** (Central Inland Fisheries Research Institute) में किये गये अनुसंधानों के फलस्वरूप भारत में मत्स्य पालन के क्षेत्र में एक क्रांति आई है जिसके परिणामस्वरूप 85,000 किग्रा/हैक्टेयर/ वर्ष का शुद्ध मत्स्य उत्पादन हुआ है जो मत्स्य पालन के सफल भविष्य का सूचक है।

मछलियों की उपयोगी तथा उच्च उत्पादक क्षमता से युक्त प्रजातियों का नियन्त्रित परिस्थितियों में संवर्धन करने को **मत्स्यपालन** कहते हैं। मछलियाँ प्रोटीन का अति उत्तम स्रोत हैं। प्रोटीन्स के अतिरिक्त इनमें खनिज लवण, विटामिन (विशेषकर ए एवं डी) तथा स्वाथ्यप्रद वसाएँ भी प्रचुरता में पाई जाती है। अत: मछली अपने आप में एक सम्पूर्ण आहार है। खाद्य पूर्ति के अलावा इनसे प्राप्त उत्पाद एवं उपउत्पाद, मवेशियों व पालतू जन्तुओं के आहार व कई मानव उपयोगी सामग्री की तरह उपयोग में लिए जाते हैं। कुछ मछलिया जैसे कॉमन कार्प, कतला, रोहू (अलवक्षीय जल में) तथा हिलसा, सार्डीन व पामफ्रेट (लवणीय जल) को खाया जाता है। इनकी अत्यधिक उपयोगिता के कारण इनके संवर्धन व पालन हेतु विशेष वैज्ञानिक तकनीक इस्तेमाल की जाती है। मछलियों समेत कुछ अन्य जलीय जीवों (प्रॉन, लोब्स्टर, मौलस्का आदि) के पालन व संवर्धन को **जल संवर्धन** या **जलकृषि** (Aquaculture) कहते हैं।

संवर्धनशील मछलियों के प्रकार (Types of Cultivable Fishes)

संवर्धनशील मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं-

(1) देशज (Indigenous) या स्वच्छ जल में प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली मछलियाँ जैसे- मेजर कार्प (Major carps)।

(2) लवणजलीय मछलियाँ जो अलवण जल (Fresh water) के लिए अनुकूलित हो गयी हों जैसे- चानोस (Chanos), मुलेट्स (Mullets)।

(3) विदेशी मछलियाँ (Exotic fishes) - जो दूसरे देशों से लायी गयी हैं जैसे- मिरर कार्प (Mirror carp), चीनी कार्प (Chinese carp), क्रूसियन कार्प (Crucian carp) तथा सामान्य कार्प (Common carp)।

मत्स्य पालन कार्यक्रम का प्रबंधन (Management of Fish Culture Programme)

मत्स्य पालन एक जटिल प्रक्रिया है अत: आदर्श मत्स्य पालन के लिए इस प्रक्रिया के विभिन्न घटकों जैसे- स्थलाकृतिक परिस्थिति (Topographic situation), पानी की विशेषता, पानी का स्रोत तथा अन्य भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारक की क्रमबद्ध जानकारी होना आवश्यक होता है। जलाशय वह स्थान है जहाँ मछलियाँ विकास एवं वृद्धि करती है। इसलिक जलाशयों के प्रबंधन का महत्व है जिनमें प्रजनन, स्फुटन (Hatching), संवर्धन (Nursing), पालन-पोषण (Rearing) तथा संग्रहण (Stocking) कुंडों (Ponds) को सम्मलित किया जाता है।

मछली की जाति के अनुसार कुंड के आकार-प्रकार में थोड़ा परिवर्तन किया जा सकता है। कभी-कभी एक ही मछली की विभिन्न अवस्थाओं का संवर्धन अलग-अलग गुणों वाले कुंडों में हो सकता है। मछलियों की विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए उनके संवर्धन के लिए विभिन्न प्रकार के कुंडों का निर्माण किया जाता है।

1. प्रजनन कुंड (Breeding Pond) - मत्स्य पालन के प्रथम चरण के रूप में प्रजनन के लिए विशेष प्रकार के कुंडों का निर्माण किया जाता है जिन्हें प्रजनन कुंड कहते हैं। ये कुंड नदी या दूसरे प्राकृतिक जलोद्‌गम स्रोतों के पास बनाये जाते हैं।

प्रजनन के प्रकार (Types of breeding)

प्रजनन दो प्रकार का होता है-

(1) प्राकृतिक प्रजनन (बंध प्रजनन) (Natural breeding)।

(2) प्रेरित प्रजनन (Induced breeding)।

(i) प्राकृतिक प्रजनन (Natural breeding- Bundh breeding)

प्राकृतिक बंध एक विशेष प्रकार के ताल होते हैं जहाँ प्राकृतिक नदीय (Riverain) परिस्थितियों या किसी भी प्राकृतिक जल स्रोत का प्रयोग संवर्धन योग्य मछलियों के प्रजनन के लिए किया जाता है। ये विशिष्ट रूपरेखा वाले (Designed) बंध निचले क्षेत्रों में ही बनाये जाते हैं तथा इनमें वर्षा का जल संग्रहित करने की अपार क्षमता होती है। इन बंधों में आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालने के लिए निकास द्वार होता है। बंध का छिछला भाग अंडजनन (Spawning) के लिए प्रयुक्त होता है। बंध तीन प्रकार के होते हैं-

(1) गीला बंध (Wet bundh) - इनमें पूरे वर्ष जल भरा रहता है।

(2) सूखा बंध (Dry bundh) - यह बंध मौसमी होता है। वर्षा ऋत के बाद वह सूख जाता हैं।

(3) आधुनिक बंध (Modern bundh) - इन्हे पक्का बंध भी कहते हैं। इनको पक्की दीवारों से बनाते हैं। बंध के सबसे निचले स्तर वाले भाग पर लगा निकास द्वार इस बंध का विशिष्ट लक्षण है। निकासी द्वार की सहायता से प्रत्येक अंडजनन के पश्चात बंध का सारा पानी बाहर निकाल दिया जाता है।

विभिन्न मछलियों के प्रजनन की विशिष्टता के अनुरूप अंडजनन के लिए उपयुक्त बंध का प्रयोग किया जाता है।

(ii) प्रेरित प्रजनन (Induced breeding)

मछलियाँ जहाँ प्रजनन करती हैं सामान्यत: मत्स्य बीज वहीं से एकत्रित कर लिया जाता है किन्तु इस व्यवस्था में कुछ कमियाँ हैं। इस प्रकार से एकत्रित अंडे कई प्रकार की मछलियों के हो सकते हैं जिनमें से कुछ अंडे परभक्षी मछलियों के भी हो सकते हैं। इन कमियों को ध्यान में रखते हुए, अच्छी श्रेणी का बीज प्राप्त करने के निमित्त कुछ नई व उन्नत प्रकार की तकनीक का विकास किया गया है जिसके द्वारा मछलियों में

कृत्रिम निषेचन कराया जाता है।

कृत्रिम निषेचन हेतु अंडों से भरी परिपक्व मादा मछली को हाथ में लेकर उदर को आगे से पीछे की ओर हल्के से दबाते हुए अंडे प्राप्त कर लिए जाते हैं। इसके पश्चात एक नर मछली लेकर उसका उदर नीचे की तरफ करके दबा कर उसका शुक्र निकाल कर अलग एकत्र कर लिया जाता है। इसके बाद निश्चित विधि अनुसार निषेचन करा दिया जाता है।

1. मत्स्य बीज (Fish Seed) - मत्स्य बीज प्रजनन कुंड से एकत्र किया जाता है। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों पर मछली एकत्र करने के लिए अनेकों अड्डों (Station) का निर्माण करवाया गया है। गंगा, यमुना, गोमती, बेतवा, घाघरा व अन्य नदियों के प्रजनन स्थलों से मत्स्य बीज एकत्र किया जाता है। मत्स्य बीज एकत्र करने के सबसे उपयुक्त स्थल इन नदियों के मोड़ वाले स्थान है। जलांडक (Spawn) एकत्र करने वाले जाल को सामान्यत: बेन्ची जाल या शूटिंग नैट (Benchi Jal or Shooting net) कहते हैं। मछलियों के विकास की सभी अवस्थाएँ गमचे में एकत्र की जा सकती हैं जहाँ से इन्हें स्फुटन गर्त (Hatching pit) में पहुँचाया जाता है।

2. स्फुटन गर्त (Hatching Pit) - निषेचित अंडे स्फुटन के लिए स्फुटन गर्त में रखे जाते हैं। स्फुटन गर्त बनाते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है।

(1) स्फुटन गर्त प्रजनन स्थल के निकट होना चाहिए।

(2) यह आकार में छोटा होना चाहिए।

(3) इसमें इतनी मात्रा में पानी होना चाहिए जो एक या दो महीनों में सूख जावे।

(4) ये संख्या में अधिक होने चाहिए।

स्फुटन गर्त के प्रकार (Types of Hatching Pits)

ये दो प्रकार के होते हैं-

(i) स्फुटनशाला (Hatcharies) - ये छोटे आकार के कुंड होते हैं जिनमें निषेचित अंडे स्थानान्तरित किये जा सकते हैं। लगभग 2 से 15 घंटों के अन्दर अंडों में स्फुटन हो जाने से बच्चे निकल आते हैं।

(ii) स्फुटन हापा (Hatching hapas)- ये आयताकार ट्रफ (trough) के आकार के टैंक होते हैं। इस प्रकार के हापा में पानी के लगातार बहाव के कारण मछली के अंडों को हवा मिलती रहती है। नदी में बांस के टुकड़े गाड़कर उनमें मोटा कपड़ा बांधकर इसे तैयार किया जाता है। इस बाहरी हापा के अन्दर मछरदानी की जाली बांधी जाती है। हापा का आकार लगभग 3' x 1.5' x 1' होता है।

मत्स्य पोने (Fish fry) एकत्र करके संवर्धन कुंड में स्थानान्तरित किये जाते है। स्थानान्तरण करते समय पोनों के मरने की सम्भावना रहती है।

मत्स्य पौनों अथवा जीरों को स्फूटन हापा से संवर्धित कुंड में ले जाने के लिए एल्केथीन (Alcathen) के थैलों का प्रयोग किया जाता हैं।

चित्र 41.2 स्फूटन गर्त

3. परिचर्या या संवर्धन (Nursing) - संवर्धन तालाब (Nursing pond) को मत्स्य पौना या जीरो के स्फुटन से पूर्व ही तैयार करना ठीक रहता है। इस तालाब में जल का प्रवेश तथा निकास भी नियंत्रित होना चाहिए। संवर्धन तालाब में परभक्षी मछलियाँ भी नहीं होनी चाहिए तथा इसमें प्राकृतिक एवं रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भी करना पड़ता है जिससे प्लवक विकसित होते हैं जो मछलियों का भोजन हैं। संवर्धन तालाब में मृत्युदर बढ़ जाती है, अत: पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। जब संवर्धन तालाब में पौने की जीरों की लम्बाई 10-15 से.मी. तक हो जाती है तो उन्हें पालन पोषण कुण्ड में स्थानान्तरित किया जाता हैं।

4. पालन-पोषण (Rearing) - पालन पोषण कुंड में अंगुली-मीन (Finger lings) को पूरा पोषण प्राप्त होता है कारण कि ये लम्बे कुंड होते हैं, जिनमें पर भक्षी जन्तु नहीं होते किन्तु अंगुलीमीन के उचित वृद्धि व स्वास्थ्य के लिए पूरी व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती है। ये मौसमी अथवा बारहमासी भी हो सकते हैं। इनमें जब अंगुलीमीन की लम्बाई 20 से. मी. हो जाती है तो इन्हें संग्रहण तालाब में स्थानान्तरित करते हैं।

अंगुलीमीन से संग्रहण तालाब में ले जाने के लिए 1000 लीटर की क्षमता के पात्र काम में लाते हैं। इन पात्रों के भीतरी सतह पर 'फोम' लगा हुआ होता है, जिससे छोटी मछलियों की चोट तथा धक्कों से रक्षा की जा सकें। इन पात्रों में ऑक्सीजन हेतु वायु संचरण का उचित प्रबन्ध होता है।

5. संग्रहण (Stocking) - संग्रहण तालाब में भोजन की पर्याप्त मात्रा का पूरा ध्यान रखा जाता है, जिससे इसमें छोड़ी गई मछलियों की अच्छी वृद्धि हो सके। उपयुक्त एवं पर्याप्त भोजन के साथ ही अवांछित एवं परभक्षी मछलियों से संग्रहण तालाब को मुक्त रखा जाता है। उचित

मात्रा में खाद आदि डालने की व्यवस्था भी की जाती है, जिससे जन्तु एवं पादप प्लवकों की संख्या बढ़ाने में सहायता मिलती है। ये सभी बातें मछलियों की जाति एवं संख्या पर निर्भर होती हैं। जब मछलियों की लम्बाई व भार अधिकतम हो जाता है तो इन्हें पकड़ने की क्रिया सम्पन्न करते हैं।

पूर्ण विकसित एवं वयस्क मछलियों को पकड़ कर बिक्री के लिए ले जाते हैं, किन्तु इस समय छोटी-छोटी मछलियों को पुन: पोषण कुंड में अथवा संग्रहण तालाब में लम्बाई एवं भार आदि गुणों के आधार पर छोड़ दिया जाता है।

6. मछलियों को पकड़ने की विधियाँ (Methods of Fishing or Harvesting) - प्राचीन काल से मछलियों को पकड़ा जाता रहा है। पहले ये पत्थर व भालों द्वारा पकड़ी जाती थी, किन्तु अब इन्हें जटिल फन्दों, जालों व लाइनों द्वारा पकड़ा जाता है। हमारे देश में अलग-अलग जगहों पर पृथक-पृथक विधियाँ काम में लाई जाती है। मछलियां पकड़े जाने को **मत्स्यन** (Fishing) कहते हैं।

मत्स्यन के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नानुसार है-

(1) तली मत्स्यन (Standing Fishing)

(2) बंशी मत्स्यन (Angling Fishing)

(3) फंदा मत्स्यन (Trap Fishing)

(4) उलीचने से मत्स्यन (Fishing by Scooping)

(5) उत्पादक या निमज्जन जाल द्वारा मत्स्यन (Dip or Lift net Fishing)

(6) घघरिया या खेपला जाल द्वारा मत्स्यन (Fishing by Ghagaria Jal or Cast net)

(7) पर्स जाल द्वारा मत्स्यन (Fishing by Purse net)

(8) क्लोम जाल द्वारा मत्स्यन (Fishing by Gill net)

(9) संकर्ष जाल द्वारा मत्स्यन (Fishing by Drag net)

(10) विद्युत मत्स्यन (Electric Fishing)

उपरोक्त विधियों के माध्यम से मत्स्यन की क्रिया सम्पन्न कर उन्हें परिरक्षित भी किया जाता है। यथा समय परिरक्षण नहीं किये जाने से मछलियाँ शीघ्र ही अपघटित (Decompose) होकर नष्ट हो जाती है। मछलियाँ के परिरक्षण हेतु प्रमुखत: निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जाता हैं।

(i) प्रशीतन (Refrigeration)

(ii) गहन हिमीकरण (Deep freezing)

(iii) हिमीभूत कर सुखाना (Drying after freezing)

(iv) धूप में सुखाना (Sun drying)

(v) सूर्योपचार (Sun curing)

(vi) मोना उपचार (Mona Curing)

(vii) नम उपचार (Wet Curing)

(viii) लवणन (Salting)

(ix) धूमन (smoking)

(x) डिब्बाबन्दी (Canning)

III. मधुमक्खी पालन
(Apiculture or Beekeeping)

मधुमक्खी संघ आर्थोपोडा के वर्ग इन्सैक्टा का एक सदस्य है, जो बहुरुपिता (Polymorphism) व कार्य विभाजन दर्शाने वाला सामाजिक कीट है। मधुमक्खी एक उपयोगी कीट है जिससे शहद (Honey) तथा मोम (Wax) जैसे लाभदायक पदार्थ प्राप्त होते हैं। यद्यपि मधुमक्खी पालन की जानकारी मनुष्य को लगभग 4000 वर्ष पहले से ही है किन्तु मधुमक्खियों को वैज्ञानिक तरीके से पालन कर एक लाभकारी उद्योग की तरह स्थापित करने की तकनीक पिछले कुछ दशकों में ही विकसित हुई हैं। मधुमक्खी पालन की ऐसी तकनीक को ही **मधुमक्खी पालन** या **एपीकल्चर** कहते हैं। सफल मधुमक्खी पालन हेतु निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण है -

1. मधुमक्खियों की प्रकृति व स्वभाव का ज्ञान। 2. मक्खियों के दल को पकड़ना व उन्हें छत्ते में रखना। 3. विभिन्न मौसमों में छत्तों का प्रबन्धन, शहद व मोम का रख-रखाव व एकत्रीकरण।

मधुमक्खी की महत्वपूर्ण जातियाँ (Important Species of Honey-bee)- मधुमक्खियों की निम्न चार जातियाँ पाई जाती हैं जिनसे मधु प्राप्त किया जाता है-

(i) *एपिस डोर्सेटा* या रॉक मधुमक्खी (*Apis dorsata* or Rock-bee)- इसे सारंग मक्खी भी कहते हैं। यह सबसे बड़े आकार की होती है तथा सर्वाधिक मात्रा में शहद उत्पन्न करती है। गुस्सैल (Aggressive) एवं प्रवासी प्रकृति होने के कारण इन्हें पालना सम्भव नहीं है।

(ii) *एपिस इन्डिका* अथवा भारतीय मोना मक्खी (*Apis indica* or Indian Mona-bee) - यह सम्पूर्ण भारत में मिलने वाली, सारंग मक्खी से छोटी तथा शान्त स्वभाव की होती है। इसके प्रति छत्ते से 3-4 किग्रा, शहद प्राप्त होता है। यह आसानी से पाली जा सकती हैं।

(iii) *एपिस फ्लोरिया* अथवा भृंगा मक्खी (*Apis florea* or Bhringa bee)- यह आकार में सबसे छोटी व डरपोक प्रकृति की होती है। इसके एक छत्ते से केवल 250 ग्राम शहद प्राप्त होता है, अत: व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है।

(iv) *एपिस मैलीफेरा (Apis mellifera)* - यह यूरोपियन मक्खी भी कहलाती है तथा शान्त प्रकृति की होती है। इसके प्रति छत्ते से मोना मक्खी की अपेक्षा 9-10 गुणा अधिक शहद मिलता है। यह

व्यापारिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी है। इसकी इटालियन किस्म अधिक महत्वपूर्ण है।

मधुमक्खी का सामाजिक संगठन (Social Organisation of Honey-bee) – मधुमक्खी के निवह (Colony) में उच्च स्तरीय सामाजिक संगठन पाया जाता है जो कि विकसित प्रकार का श्रम विभाजन दर्शाता है। मधुमक्खियों में तीन प्रभेद (Castes) पाये जाते हैं–

(i) रानी (Queen) – पूरे निवह में केवल एक बड़े आकार की रानी मक्खी होती है। इसको रॉयल जैली नामक उत्तम भोजन दिया जाता है। इसका कार्य केवल प्रजनन करना होता है।

(ii) नर या ड्रोन (Drone) – ये अनिषेचित अण्डों से विकसित होते हैं तथा इनका कार्य केवल रानी के साथ मैथुन कर अण्ड-निषेचन करना होता है (चित्र 41.0)।

(iii) श्रमिक (Workers) – ये हजारों की संख्या में होते हैं तथा ये निषेचित अण्डों से उत्पन्न, बन्ध्य मादाएँ होती हैं। ये निवह के समस्त आन्तरिक व बाहरी कार्य करते हैं। इनका कार्य परागकण एकत्रीकरण, शहद व मोम निर्माण, भोजन संग्रह व छत्ते की सुरक्षा करना होता है।

मधुमक्खी पालन की विधियाँ (Methods of apiculture)

मधुमक्खी पालन में निम्न दो विधियाँ काम में ली जाती हैं।

1. पुरानी देशी विधि 2. आधुनिक वैज्ञानिक विधि

1. पुरानी देशी विधि (Old indigenous method) – यह विधि प्राचीन काल से ही मधु एकत्र करने के लिये काम में लाई लाती है। इस विधि में मधुमक्खियों को छत्तों से धुंआ कर के उड़ाया जाता है व शेष को मार कर छत्ते को निचोड़ कर मधु इकट्ठा किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त मधु शुद्ध नहीं होता है क्योंकि छत्ते में उपस्थित अण्डों व बच्चों के अवशेष मधु में आ जाते हैं। साथ ही छत्ते भी हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। अत: आज कल इस विधि का प्रयोग मधु प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाता है।

2. आधुनिक वैज्ञानिक विधि (Modern scientific method) – इस विधि में वैज्ञानिक विधि द्वारा कृत्रिम छत्तों से मधु प्राप्त किया जाता है। मधु शुद्ध भी होता है एवं छत्तों को भी हानि नहीं होती है। आजकल मधुमक्खी पालन ने एक उद्योग का रूप ले लिया है व कई लोगों को इससे रोजगार मिल रहा है।

मधुमक्खी - पालन के उपकरण (Appliances of Apiculture)

मधुमक्खी पालन में निम्न उपकरणों का प्रयोग किया जाता हैं।

1. कृत्रिम मधुमक्खी- पेटिका
2. कोम्ब- फाउन्डेशन
3. मधु-निष्कासन उपकरण
4. टोपी खोलने का चाकू
5. अन्य उपकरण

1. कृत्रिम मधुमक्खी पेटिका (छत्ता) (Artifical bee hive) – इसका आविष्कार लैंगस्ट्रोथ (Langstroth, 1851) ने किया। आज कल लकड़ी के कई प्रकार के सन्दुक या छत्ते काम में लिये जाते हैं। एक सामान्य मधुमक्खी पेटिका को जाली द्वारा दो भागों में बाँटा जाता है। नीचे का बड़ा भाग शिशु कोष्ठकर (Brood chamber) तथा ऊपर का छोटा सुपर कोष्ठक (Super chamber) कहलाता है। दोनों कोष्ठों को विभेदित करने वाली जाली को रानी-पृथक्कारक (Queen-excluder) कहते हैं। इस जाली के छेद इतने छोटे होते हैं, कि सिर्फ श्रमिक मक्खियाँ ही गुजर कर शिशु कोष्ठ से सुपर कोष्ठ तक आ- जा सकती हैं।

2. कोम्ब- फाउन्डेशन (Comb foundation): पेटिका के शिशु कोष्ठ में कोम्ब फाउन्डेशन पाये जाते हैं। ये मोम के बने ढांचे होते हैं। जिनके दोनों ओर षट्भुजाकर कोष्ठक बने होते हैं। मधुमक्खियाँ इसी आकार के दोनों ओर कोष्ठक बनाती हैं जिसमें रानी अण्डे देती है। सुपर कोष्ठक में भी कोम्ब फाउन्डेशन रखे जाते हैं। जिनमें बने कोष्ठकों में मधुमक्खियाँ मधु इकट्ठा करती हैं।

चित्र 41.3 मधुमक्खी पालन हेतु कृत्रिम पेटिका

3. मधु निष्कासन उपकरण (Honey extracting apparatus)– कृत्रिम छत्ते का शहद एक मधु-निष्कासन उपकरण द्वारा निकाला जाता है। यह टीन का एक बड़ा ड्रम होता है। इसमें कुछ जालीदार थैलियाँ घूमने वाले डंडों पर लगी होती हैं (41.6 (अ))। ड्रम के नीचे वाले भाग में एक टोंटी होती है (41.6 (ब))। शहद का निष्कासन अपकेन्द्र बल के नियम (Principle of centrifugal force) द्वारा सम्भव होता है। ढाँचों से कोम्बस को अलग कर जालीदार

थैलियों में रख तेजी से घुमाते हैं। शहद ड्रम की दीवार से टकराकर नीचे गिरता है और टोंटी द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है। इस विधि से कोम्बस या छत्तों को हानि नहीं पहुँचती तथा उन्हें बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

(अ)

(ब)

चित्र 41.4 मधु निष्कासन हेतु प्रयुक्त उपकरण

4. टोपी खोलने का चाकू (Uncapping knife) - छत्ते के मधु-भाग में एकत्रित शहद के कोष्ठ मोम की टोपी के ढके होते हैं। इस कारण छत्ते को मधु-निष्कासन उपकरण में रखने से पूर्व चाकू को गरम करके टोपी को छूने से वह पिघलकर खुल जाती है।

5. अन्य उपकरण (Miscellaneous) - धूम्रण उपकरण एक टीन के डिब्बे के रूप में होता है। इसके एक सिरे से धुँआ निकलता है। मधुमक्खियों को वश में करने के लिए इससे धुआँ छोड़ते हैं। रबर के दस्ताने पहन कर हाथों को मधुमक्खियों के डंक से सुरक्षित रखते हैं। मधुमक्खियाँ के प्रकोप से बचने के लिए रेशमी अथवा सूती धागों की बनी जाली पहनते हैं।

सावधानियाँ (Precautions)

मधुमक्खियाँ पालने के लिये निम्नलिखित सावधानियाँ आवश्यक होती हैं-

1. फल व फूलों के पौधों की दूरी छत्ते से आधे मील से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2. मधुमक्खी- पेटिका को ठंडे तथा छायादार स्थान पर रखनी चाहिए।

3. ताजे पानी के स्रोत निकट दूरी पर ही होना चाहिये।

आधुनिक विधि के लाभ (Advantage of modern method)

आधुनिक विधि द्वारा मधुमक्खी पालन के अनेक लाभ होते हैं-

1. मधुमक्खियों के क्रियाकलापों पर नजर रखी जा सकती है।

2. कृत्रिम भोजन देकर एक निवह का विकास किया जा सकता हैं।

3. एक ही छत्ते का बार-बार प्रयोग किया जा सकता है। अत: श्रमिक मधु एकत्रित करने पर अधिक ध्यान देते हैं।

4. प्रतिकूल मौसम में कृत्रिम छत्ते को उठाकर सुरक्षित स्थान पर रखा जा सकता है।

5. शत्रुओं से छत्ते की रक्षा की जा सकती है।

IV. रेशमकीट पालन
(Sericulture)

व्यापारिक दृष्टि के कच्चा रेशम (Raw silk) प्राप्त करने के लिए रेशमकीटों का पालन **रेशमकीट पालन** कहलाता है। सर्वप्रथम सन् 2697 बी.सी. में चीन **के क्वांग टी** (K Wang Ti), प्रदेश की महारानी लोट्ज़ू (Lotzu) ने रेशम निर्माण की खोज की। भारत में रेशम कीट के अध्ययन एवं पालन पर सर्वप्रथम **लेफरॉय** (Lefroy, 1905) ने नई दिल्ली के पूसा इंस्टीट्यूट (Pusa Institute) में प्रयोग प्रारम्भ किये। पिछले 15-20 वर्षों से भारत में रेशम उत्पादन में गुणवत्ता तथा रेशम के प्रकार में काफी सुधार हुआ है। भारतीय रेशम को उसकी उत्तम गुणवत्ता, चमक-दमक (Lustrous shining) तथा पारम्परिक रंग संयोजनों हेतु विश्व भर में जाना जाता है। भारत में आसाम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, पंजाब, कश्मीर तथा कर्नाटक प्रदेश रेशम उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं।

रेशमकीट की प्रमुख जातियाँ (Major Species of Silkworm) - रेशमकीट की प्रमुख जातियाँ उनसे प्राप्त रेशम का प्रकार तथा जिन पादपों की पत्तियों को वे भोजन के रूप में उपयोग करते हैं, उनका विवरण तालिका 41.1 में दिया गया है।

इस तालिका में दर्शाये गये रेशमकीटों में से *बॉम्बिक्स मोराई (Bombyx mori)* ही प्रमुखत: महत्वपूर्ण हैं। यह शहतूत की पत्तियों पर पाया जाता हैं। अत: यह मल्बरी सिल्क शलभ कहलाता है। यह शलभ कीट वर्ग की बॉम्बिसिडी (Bombycidae) कुल का सदस्य हैं।

मल्बरी रेशमकीट का जीवन-चक्र (Life Cycle of Mulberry Silk-moth) - वयस्क रेशमकीट लगभग 4-5 सेमी. लम्बा तथा गन्दे सफेद रंग का होता है। इसके जीवन चक्र में अण्डा (Egg), लार्वा (Larva), प्यूपा (Pupa) एवं वयस्क शलभ (Adult Moth) अवस्थाएँ पाई जाती हैं। निषेचन आन्तरिक होता है। अण्ड अवस्था सामान्यत: दस दिन तक व लार्वा अवस्था 35-30 दिनों तक की होती है। रेशमकीट के लार्वा को कैटरपिलर (Caterpillar) कहा जाता है। लार्वा अवस्था इसके जीवनचक्र की सर्वाधिक सक्रिय अवस्था होती है जिसमें यह आगे विकसित होने वाली अवस्थाओं के संचालन के लिए आवश्यक पोषक पदार्थों का संचय करता है। रेशमकीट की लार्वा अवस्था में पाँच इन्सटार स्टेज (Instar stages) पाई जाती है जिसमें यह चार बार **निर्मोचन** (Moulting) दर्शाता है। कैटरपिलर बेलनाकार, चिकने तथा लगभग 4-5 सेमी. लम्बे होते हैं। इनमें एक जोड़ी रेशम ग्रन्थियाँ (Silk glands) विकसित हो जाती हैं जो लार ग्रन्थियों (Salivary glands) का रूपान्तरण होती हैं। लार्वा अवस्था

में यह सक्रिय रुप में शहतूत ही पत्तियों को खाता है तथा पूर्ण विकसित होने पर भोजन ग्रहण करना बन्द कर देता है। इस समय यह अपने ऊपर रेशम के धागे को लपेटकर **कोकून** (Cocoon) नामक आवरण बना लेता है व स्वयं प्यूपा में बदल जाता है। प्यूपा को क्राइसेलिस (Chrysalis) कहते हैं। प्यूपा 10-12 दिन के बाद कोकून को गलाकर वयस्क शलभ की तरह बाहर आता है।

तालिका 41.1 : रेशमकीट की प्रमुख जातियाँ (Major species of Silk Worm)

क्र.	रेशमकीट की जाति	उत्पादित रेशम का प्रकार	रेशमकीट के भोज्य पादप
1.	*बॉम्बिक्स मोराई* *(Bombyx mori)*	मल्बरी सिल्क (Mulberry silk)	शहतूत *(Morus alba)*
2.	*एन्थैरिया पैफिया* *(Antheraea paphia)*	टसर सिल्क (Tasser silk)	अर्जुन *(Terminalia arjuna)*
3.	*एन्थैरिया आसामेन्सिस* *(Antheraea assamensis)*	मूगा सिल्क (Muga silk)	सोम *(Machilus bombycina)*
4.	*एटकेस रेसिनी* *(Attacus rechinii)*	ऐरी सिल्क (Eri silk)	अरण्डी *(Ricinus communis)*
5.	*थायोपेलिया रेलीजिओसा* *(Thiopalia religiosa)*	देव मूगा सिल्क (Dev muga silk)	*मैचिलस* तथा *फाइकस*

रेशम उत्पादन उद्योग (Sericulture Industry)

व्यावसायिक स्तर पर रेशम के उत्पादन के लिए रेशम कीट के लालन पालन को **रेशम कीट पालन** (Sericulture) कहते हैं। रेशम प्रकृति प्रदत्त एक विलक्षण उपहार है परन्तु रेशम का व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन एक जटिल कार्य है रेशम कीट पालन उद्योग के विस्तार में जाने से पहले इसकी आवश्यकताओं तथा मुख्य सोपानों (चरणों) की जानकारी आवश्यक है। इस उद्योग की मूलभूत आवश्यकतायें *बॉम्बिक्स मोराई* की उन्नत प्रजाति तथा अच्छे पोषक गुणों वाले शहतूत के पौधे हैं। इनके अतिरिक्त दूसरी सामान्य आवश्यकताएँ निम्न हैं-

(1) मचान (Machana) - रेशम कीट को पालने के लिए उचित स्थान।

(2) पालन-पोषण ट्रे (Rearing tray) - शहतूत के पत्तों के साथ रेशम कीट के अंडों को रखने के लिए।

(3) बुनने वाली या चन्द्राकिस ट्रे (Spinning tray)- पूर्ण विकसित इल्लियों को रखने के लिए जो प्यूपा अवस्था में पहुंचने ही वाली हो।

(4) डाल (Dalas)- शहतूत की पत्ती लाने के लिए।

(5) पत्तियाँ काटने वाला चाकू (Chopping knife) - शहतूत की पत्तियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के लिए।

(6) टोकरियाँ- शहतूत की पत्तियों को वितरित करने के लिए।

(7) आर्द्रतामापी (Hygrometer) - वातावरण में आर्द्रता का प्रतिशत नापने के लिए।

(8) तापमापी (Thermometer)- कमरे का तापमान लेने के लिए ।

(9) ऑवेन (Oven) - रेशम कीट की कुछ अवस्थाओं को नियन्त्रित ताप पर रखने के लिए।

(10) फ्रीजर (Freezer) - अगली पीढ़ी के लिए अंडे (बीज) संग्रहित करने के लिए।

(अ) पालन-पोषण ट्रे

(ब) चन्द्राकिस ट्रे

(स) मचान

चित्र 41.5 : रेशम उत्पादन उद्योग

(i) रेशम कीट का पालन-पोषण (Rearing of silkworm)

पालन-पोषण से तात्पर्य है- अंडे देने से लेकर ग्रीष्मसुप्तावस्था (Aestivation), शीतसुप्तावस्था (Hibernation), अंडे सेना, इल्लियों की प्रारम्भिक अवस्थाओं की देखभाल से लेकर कोकून बनने तक की सारी प्रक्रियाएँ। अत: उचित व चरणबद्ध देखभाल के लिए हमें बीजागार तकनीक (Grainage technology) पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

(ii) बीजागार का प्रबंधन (Grainage management)

रेशम कीट पालकों को उत्तम उचित प्रकार का बीज (Silkworm egg) उपलब्ध कराना तथा प्रजातियों के मौलिक गुणों को बनाये रखना ही बीजागार प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य है। इस कार्य हेतु बीज (Seed egg) प्राप्ति के लिए पाले जा रहे रेशम कीट अर्थात कैटरपिलर अवस्था को उचित पोषण, रोगों से रोकथाम तथा अन्य देखभाल पर ध्यान रखना चाहिए। कैटरपिलर से कोयों का निर्माण होता है।

अंतिम चयन के पश्चात कोयों को लिंग के अनुसार अलग-अलग कर लिया जाता है जिसके लिए कोकून के एक सिरे को हाथ द्वारा या नागाहारा (Nagahara) उपकरण द्वारा काटकर खोल देते हैं। नागाहारा मशीन द्वारा एक घंटे में 10,000 से 15,000 तक कोकून काटे जा सकते हैं। व्यापारिक स्तर पर अंडों के उत्पादन के लिए श्लथ (Loose) प्रकार के कोयों को प्रयोग में लाया जाता है तथा व्यापक पेब्रिन संसूचक यंत्र (Mass pebrine detecting machine) या साधारण माइक्रोस्कोप द्वारा ही मादा रेशम प्रौढ़ कीटों का, जिनसे अंडे प्राप्त करने हों, सामूहिक रूप से पेब्रिन बीमारी से मुक्त होने की जांच कर लेनी चाहिए।

चित्र 41.6 मल्बरी रेशम का उत्पादन

(iii) रेशमकीट पालकों तथा व्यापारिक पालन-पोषण के लिए बीज की आपूर्ति (Supply of seed to rearers and commercial rearing)

बीजागार प्रबंधन के पश्चात अगला चरण कीट पालकों को बीज की आपूर्ति है। यह आपूर्ति कीट पालके के ज्ञान एवं अनुभव के अनुसार दो प्रकार की होती है- यथा अंडों की आपूर्ति तथा 2nd इन्स्टार इल्ली की आपूर्ति।

पुराने पालन कर्ता जो काफी समय से यह कार्य कर रहे हैं और पालन-पोषण की तकनीक से भली-भांति परिचित हैं वे अंडे खरीद सकते हैं किन्तु नये कीट पालक जो पहली बार यह कार्य कर रहे हैं और जिन्हें पालन-पोषण तकनीक की कोई जानकारी नहीं है उन्हें हमेशा IInd इन्सटार इल्ली ही ले जानी चाहिए। Ist, IInd तथा IIIrd इन्सटार इल्ली की देखभाल सावधानी पूर्वक करनी चाहिए। 4th तथा 5th इन्स्टार कैटरपिलर का पालन-पोषण मुख्यत: नायलोन जाल द्वारा लटकी ट्रे या जमीन पर रखी ट्रे में होता है।

इस प्रकार रेशम कीट के पालन पोषण की उन्नत तकनीक द्वारा उच्च कोटि के कोयों का उत्पादन संभव हो सका है। Ist, 2nd, 3rd, 4th तथा 5th इन्स्टार इल्ली के पालन पोषण के लिए उत्तम तापमान क्रमश: 27, 27, 25, 24 तथा $23^{\circ}C$ हैं।

(iv) कोयों का बनना (Spinning of cocoons)

यह वह समय है जब पूर्ण परिपक्व इल्ली भोजन लेना बंद कर देती हैं तथा अपनी रेशम ग्रन्थियों से एक चिपचिपा पदार्थ स्त्रवित करना प्रारम्भ कर देती हैं। इस अवस्था में इल्ली को स्पिनिंग ट्रे में स्थानान्तरित कर देते है तथा इन्हें कुछ समय के लिए तिरछे करके सूर्य की ओर रख देते है। तीन दिन में स्पिनिंग पूरी हो जाने के पश्चात कोया बन जाता है जो यह रेशम कीट पालन की अन्तिम अवस्था है।

(v) कौकूनों से रेशम प्राप्त करने की विधि (Method of obtaining silk from cocoons)

कोकूनों से रेशम निम्न विधि द्वारा प्राप्त किया जाता है। सर्वप्रथम कोकूनों को गर्म जल में डालकर या उन्हें गर्म बन्द ओवन में रख कर कृमिकोष को मारा जाता है। कोकूनों को मारने की क्रिया को **स्टिफलिंग** (Stiffiling) कहते हैं। उबालने के पश्चात् कोकूनों से रेशम उधेड़ा जाता है। इस क्रिया को **रीलिंग** (Reeling) कहते हैं। उबालने से कोकून मुलायम हो जाते हैं व धागों के परत ढीले हो जाते हैं जिससे रेशम को सुविधा पूर्वक उधेड़ा जा सकता है। पूरा कोकून एक धागे का बना होता है व एक कोकून से 1000 से 15,000 मीटर लम्बा साबुत धागा निकलता है। धागा को एक बड़े चक्र के चारों ओर लपेटा जाता है फिर स्पूल (Spool) पर लपेट लिया जाता है। इसे कच्चा रेशम या रील्ड रेशम (Reeled Silk) कहते हैं। कच्चे रेशम को पुन: पानी में उबालते हैं और इन्हें रासायनिक अम्लों के धोलों से धोते हैं जिससे ये साफ हो जाते है व

इन पर चमक आ जाती है। इन्हें ऐंठकर धागों में बदला जाता है। अब इन्हें फाइबर रेशम (Fibre silk)कहते हैं। इस क्रिया को **स्पिनिंग** (Spinning) कहते हैं-

रेशम कीट के रोग - (Diseases of Silk Worm)

रेशम के कीटों में अनेक व्याधियाँ लगती है जिनमें मुख्य है-

(1) पैब्राइन (Pebrine) यह दो प्रकार की होती हैं-

(क) वाइरस पैब्रइन - यह *Borreline bombycis* नामक वायरस के द्वार फैलती है तथा 8-10 दिन के पश्चात् लार्वा मरने लगते हैं इससे बचने के लिये मरे हुए लार्वा को अलग कर देना चाहिए तथा उपकरणों को 30 प्रतिशत ट्राईक्लोरी ऐसीटिक एसिड से 15 मिनट तक ओर फिर पानी से धोना चाहिए।

(ख) प्रोटोजोआन पैब्राइन- यह *Nosema bombycis* नामक प्रोटोजोआन से होती है। यह लार्वा तथा प्रौढ़ दोनों कीटों में लगती हैं। प्रौढ़ कीट का शरीर अनियमित (Irregular) तथा सिकुड़ जाता है एवं लार्वा भी छोटा रह जाता है तथा कृमि-कोष बनने से पहले ही मर जाता है। इससे बचने के लिये यह आवश्यक है कि स्वस्थ्य शलभों के अण्डे ही प्रयोग किये जायें।

2. फ्लेचरी तथा गेरेसरी (Flacherie and Garsserie) - ये बैक्टीरिया द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ हैं।

V. लक्ष अथवा लाख कीट संवर्धन (Lac Culture)

लाख एक रालदार अथवा बेरोजा (Resinous) पदार्थ है जो लाख कीट की लक्ष ग्रन्थियाँ द्वारा स्रावित किया जता है। सर्वप्रथम इसका वर्णन अथर्ववेद (Atharva Veda) में मिलता है जिसमें लाख कीट को लाक्षा (Laksha) नाम से वर्णित किया गया है। लाक्षा एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ होता है एक लाख जो संभवतया इस कीट की व्यक्तिगत संख्या के आधार पर रखा गया था। संस्कृत नाम लाक्षा के आधार पर ही इसे हिन्दी में लाख तथा अंग्रेजी में लैक (Lac) नाम से जाना जाने लगा। महाभारत महाकाव्य के अनुसार कौरवों ने अपने वास्तुकार (Architect) पुरोछा(Purocha) द्वारा पाण्डवों को जलाकर मारने के लिए लाक्षा गृह का निर्माण कराया था। इस संदर्भ से यह स्पष्ट होता है कि आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व महाभारत काल में लाख की बहुत अच्छी पैदावार होती थी तभी कौरवों द्वारा लाक्षाग्रह निर्माण सम्भव हो सका। अबुल फजल (1590) ने भी अपनी पुस्तक आइने अकबरी (Aina-e-Akbari) में लाख का वर्ण किया है।

सर्वप्रथम इस कीट का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन श्री जे. केर (J.Kerr) ने 1782 में किया और उन्होंने इसका नाम *Coccus lacca* रखा। 1812 में ओकन (Oken) ने इसका जीनस *लैसीफर (Laccifer)* कर दिया और यह *Laccifer lacca* कहा जाने लगा। श्री **मेहदी हसन** ने 1913 में इसका नाम *लक्षादिया इण्डिका (Lashadia indica)* रखा लेकिन श्री **ए.बी.मिश्रा**, 1930 ने इसे *Lacifer indica* कहा जिसे श्री ए.पी. कपूर (1658) ने बदलकर *Lacca indicola* कर दिया। लेकिन बाद में श्री ग्लोवर(Glover) का मत मानकर फिर से *लैसीफर लैका* नाम मिला जिसे अभी कुछ वर्ष पूर्व बदलकर इसके खोजकर्ता श्री कर के नाम पर *Kerria lacca* कर दिया गया हैं। परन्तु अधिक प्रचलित नाम *लैसीफर लैका* ही है।

लाख के व्यापारिक उत्पादन हेतु लाख कीटों के व्यापक पालन (Mass rearing) को लाख संवर्धन (Lac Culture) कहते हैं।

विश्व के कुल लाख उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग भारत में उत्पादित होता है। भारत अपने कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग विदेशों को निर्यात कर रहा है। भारत के अलावा अन्य लाख उत्पादक देशों में थाईलैण्ड, श्रीलंका, बर्मा, चीन, पाकिस्तान तथा नेपाल प्रमुख हैं। भारत में आसाम, बंगाल, बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा उड़ीसा प्रान्तों के अनेक स्थानों पर लाख कीटों का पालन एवं लाख उत्पादन किया जा रहा हैं।

लाख कीट की मुख्य विशेषताएँ (Salient features of Lac Insect) - लाखकीट में नर एवं मादा पृथक-पृथक होते हैं तथा ये लैंगिक द्विरुपता दर्शाते हैं। नर की लम्बाई 1.2 - 1.5 मिमी. होती है व रंग लाल होता है। ये आकार में मादा से छोटे होते हैं। मादा का शरीर कोमल व आकार अण्डाकार होता हैं। इसका आकार नर की अपेक्षा बड़ा, लगभग 5 मिमी. होता हैं। मादा में शीर्ष, वक्ष एवं उदर भाग बहुत अधिक स्पष्ट नहीं होते हैं। मादा का रंग सुर्ख लाल तथा इसमें पंखों का अभाव होता हैं। मादा रेजिन से निर्मित एक कोष्ठ में रहती हैं।

मादा द्वारा अपने रेजिन कोष्ठ में ही 200-500 अण्डे दिये जाते हैं। अण्डे देने के 6 सप्ताह बाद प्रथम इन्सटार(Instar) लार्वा निकलता है। इसे **अर्भक** (Nymph) भी कहा जाता है। अर्भक सक्रिय जीव होते हैं। ये मादा के कोष्ठ से बाहर निकलकर प्राय: गूदेदार (Succulent) पादपों की छोटी-छोटी कोमल टहनियों पर एकत्रित हो जाते हैं। इनकी देह पर स्थित चर्म ग्रन्थियों द्वारा लाख स्रावित किया जाता है जो हवा के सम्पर्क में आकर सूख जाता है। ये अर्भक रसदार पादपों से रस (Sap) ग्रहण करके पोषण प्राप्त करते हैं। अर्भक के 6 से 8 सप्ताह की स्थिर अवस्था के बाद कायान्तरण द्वारा लगभग 70% पंखविहीन मादाएँ एवं 30% पंखयुक्त नर उत्पन्न होते हैं। लाख कीट प्रतिवर्ष एक पोषक पादप पर दो बार (अक्टूबर- नवम्बर तथा जून-जुलाई में) अपना जीवन चक्र पूरा करता हैं।

लाख कीटों के पोषक पादप (Host plants of Lac Insects) - भारत में लाख कीटों के अनेक पोषक पादप हैं, जिनमें से

कुछ मुख्य पादप जाति निम्नलिखित हैं-

क्र.सं.	पोषक पादप का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम
1.	कुसुम (Kusum)	*श्लीचेरा ओलियोसा (Schleichera oleosa)*
2.	खैर (Khair)	*अकेशिया कैटेचू (Acasia catechu)*
3.	बेर (Ber)	*जिजिइफस मीरीशियाना (Zizyphus mauritiana)*
4.	बबूल (Babul)	*अकेशिया नाइलेटिका (Acacia nilotica)*
5.	अंजीर (Fig)	*फाइकस कैरिका (Ficus carica)*
6.	पलास (Palas)	*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (Butea monosperma)*
7.	शीशम (Shisam)	*डेलबर्जिया सिस्सो (Delbergia sisso)*

लाखकीट अपने मुखांग को पादप ऊतकों में डालकर इसका रस चूसता रहता हैं। लाख की गुणवत्ता पोषी पादप पर निर्भर करती हैं। बेर व पलास पादपों पर प्राप्त कुसुमी लाख (Kusumic lac) सर्वश्रेष्ठ प्रकार का होता हैं।

लाख की खेती (Cultivation of Lac)

लाख की खेती एक जटिल प्रक्रिया है अत: कृषकों को संरोपण (Inoculation) वृन्दन काल तथा एकत्र करने के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए है।'

चित्र 41.7 : लाख की खेती के विभिन्न चरण

(1) संरोपण अथवा प्रतिरोपण(Inoculation) - लाख के उत्पादन में पहला चरण लाख कीट का संरोपण हैं। संरोपण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा तरूण कीट अपने पोषक पौधे पर भली-भांति व्यवस्थित (Settle) हो जाता हैं। संरोपण दो प्रकार का होता हैं-

(i) प्राकृतिक संरोपण (Natural inoculation) - प्राकृतिक रूप से या अपने सामान्य क्रम में संरोपण एक सरल तथा सामान्य प्रक्रिया है जो निम्फ के वृन्दन के समय होती है। वृन्दन के समय निम्फ उसी पोषक पौधे पर दोबारा आक्रमण करते हैं तथा टहनियों का रस चूसना शुरू कर देते हैं।

(ii) कृत्रिम संरोपण (Artificial inoculation) - इस विधि में सबसे पहले जनवरी या जून में पोषक पौधे की कटाई छटाई करते हैं। वे टहनियाँ जिन पर निम्फ वृन्दन करने वाले होते हैं, 20 से 30 सेमी की लम्बाई तक काट कर ये कटे हुए टुकड़े नये पोषक वृक्ष पर स्थान-2 पर शाखाओं को ठीक से स्पर्श कराते हुए बांध दिए जाते हैं। वृन्दन हो जाने के पश्चात् ये टहनियाँ हटा दी जाती हैं (चित्र 41.9 (अ))।

(2) वृन्दन (Swarming) - यह लाख कीट के जीवन-चक्र की बहुत महत्वपूर्ण अवस्था होती है। अत: लाख का उत्पादन करने वाले को वृन्दन की तिथि का सही ज्ञान होना आवश्यक है। वृन्दन के समय निम्फ पेशियों में संकुचन होता है तथा कीट जुड़ने के स्थान से अलग हो जाता है। इस प्रकार यह एक खोखली गुहा छोड़ता है जो बाद में लाख से ढक जाती है।

(3) फसल काटना (Harvesting) - लाख जमी हुई टहनियों को पोषक पौधे से काटकर एकत्रित करने को फसल काटना (Harvesting) कहते हैं। लाख की फसल तभी काटते हैं जब वह परिपक्व (Mature) हो जाती है।

एरी फसल अप्रैल-मई में, कतकी अक्टूबर-नवम्बर में, अहगनी जनवरी-फरवरी में और जेठवीं व बैसखी जून-जुलाई में काटी जाती है। लाख की कई **किस्में** होती है जो निम्न प्रकार की हैं-

(1) एरी लाख - वह लाख जो कच्ची अवस्था में अर्थात फसल पकने से पहले काट ली जाती है।

(2) स्टिक लाख - टहनियों के रूप में फसल पक जाने पर जो लाख प्राप्त होती उसे स्टिक लाख कहते हैं।

(3) दाना लाख - वह लाख जो टहनियों से छूटकर और धोकर साफ करने के पश्चात् मिलती है।

(4) धूल-लाख - दाना लाख को पीसकर चूर्ण बनाने के पश्चात् प्राप्त होने वाली लाख की धूल लाख कहते हैं।

(5) चपड़ा लाख - दाना लाख तथा धूल-लाख गर्म करके पपड़ी के रूप में जमा लिये जाने पर चपड़ा-लाख कहलाती है।

(4) लाख को अलग करना (Scrapping of brood

lac) – जब पुराने लक्ष कक्षों से शिशु बाहर निकल जाते है तो इन टहनियों को खोल लेते हैं और इनसे लाख को चाकू इत्यादि से खुरचकर अलग कर लेते हैं (चित्र 41.9 (ब))। खुरचते समय यह ध्यान रखा जाता है कि ज्यादा छोटे-छोटे टुकड़े न होने पावें। फसल के पकने की सम्भावित तिथि का अनुमान निम्न संकेतों द्वारा मालूम किया जा सकता है-

15-20 दिन पहले लाख में दरारें दिखलाई पड़ती हैं।

मादा कीट के शरीर का रस गाढ़ा हो जाता है।

अण्डा समूह के अण्डे पूरी तरह अलग हो जाते हैं।

अण्डों के दानेदार होने का आभास होता है।

लाख का बाहरी रंग पीला और सूखा हो जाता है।

(5) लाख को धोकर साफ करन (Washing of lac) - खुरची हुई लाख को स्टिक लाख कहते हैं इसे पानी से रगड़कर अच्छी तरह धोया जाता है। जिससे एक प्रकार का रंग निकलता है जिसे लाख का रंग(Lac-dye) कहते हैं। इसे छाया में सुखाते हैं।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 2 करोड़ किग्रा. लाख उत्पन्न किया जाता है जो सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत से भी अधिक है। भारत में लाख के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत उत्पादन बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में होता हैं। लाख का उपयोग चूड़ियाँ बनाने, बर्तन निर्माण, खिलौने, पॉलिश, वार्निश व बिजली के सामान बनाने में किया जाता है। भारत में महिलाएँ इसे महावर के रुप में उपयोग करती हैं। लाख उत्पादन को उन्नत करने की दिशा में भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, नामकुम (राँची) का महत्वपूर्ण योगदान है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जन्तु मानव के लिए उपयोगिता की दृष्टि से कई प्रकार से उपयोगी होते हैं।
2. मानव द्वारा उपयोगी जन्तुओं को पालतू बनाये जाने व उनका प्रबन्धन ग्राम्यन या घरेलूकरण कहलाता है। ऐसे जन्तु सामूहिक रूप से पशुधन की श्रेणी में आते हैं।
3. आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण जन्तुओं का घरेलूकरण तथा उनके वैज्ञानिक विधि से पालन व प्रबन्धन के द्वारा मनुष्य को रोजगार तथा अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।
4. मुर्गियों एवं अन्य पक्षियों की प्रजातियों के पालन और प्रजनन को मुर्गीपालन (Poultry farming) कहते हैं। इनसे हमें माँस (ब्रायलर्स द्वारा) एवं अण्डे (लेयर्स द्वारा) प्राप्त होते हैं।
5. मछलियों की उपयोगी व उच्च उत्पादक क्षमता से युक्त प्रजातियों का संवर्धन मत्स्य पालन कहलाता है। मछलियों से हमें उत्तम किस्म की खास प्रोटीन, विटामिन-ए व डी, व कई अन्य उपयोगी उत्पाद व उप-उत्पाद प्राप्त होते हैं।
6. मछलियों समेत कई अन्य जलीय जीवों जैसे प्रॉन, लोब्सटर, मौलस्का इत्यादि के पालन व संवर्धन को जल संवर्धन या एक्वाकल्चर कहते हैं। एक्वाकल्चर क्षेत्र में विश्व में भारत दूसरे स्थान पर है।
7. मधुमक्खी एक उपयोगी कीट है जिससे शहद तथा मोम जैसे लाभदायक पदार्थ प्राप्त होते हैं। मधुमक्खियों का वैज्ञानिक तरीके से पालन मधुमक्खी पालन या एपीकल्चर कहलाता है। मधुमक्खी की *एपिस मैलीफेरा* जाति पालन हेतु सर्वाधिक उपयोगी है।
8. व्यापारिक रूप से कच्चा रेशम प्राप्त करन के लिए रेशम कीटों का पालन व प्रबन्धन रेशम कीट पालन या सेरीकल्चर कहलाता है। मल्बरी सिल्क मॉथ, *बॉम्बिक्स मोराई* प्रमुख रेशमकीट है। रेशम का उत्पादन सिल्क मॉथ लार्वा की रेशम ग्रन्थियाँ करती है। कच्चा रेशम कोकून से प्राप्त किया जाता है।
9. लाख एक प्रकार का रेजिन है जो कि *लैसिफेरा लैक्का* (= *टैकार्डिया लैक्का*) नामक कीट द्वारा उत्पन्न किया जाता है। भारत विश्व का सर्वाधिक लाख उत्पादक देश है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. कुक्कुट पालन हेतु प्रयुक्त निम्न में से कौनसी प्रजाति देशी नस्ल की है।
   (अ) सफेद लैगहॉर्न (ब) पेकिन
   (स) न्यूहैम्पशायर (द) लैगस्र
2. कुक्कुट (मुर्गी) के अण्डों का उष्मायन समय कितना है –
   (अ) 21 दिन (ब) 28 दिन
   (स) 30 दिन (द) 12 दिन
3. कुक्कुटपालन से प्राप्त होता है–
   (अ) अण्डे व शहद (ब) माँस व लाख
   (स) अण्डे व मोम (द) माँस व अण्डे
4. रेशमकीट की किस अवस्था से रेशम प्राप्त होता है?
   (अ) अण्डे से (ब) कैटरपिलर से
   (स) व्यस्क से (द) कोकून से
5. यूरोपियन मधुमक्खी का वैज्ञानिक नाम है –
   (अ) *एपिस मैलीफेरा* (ब) *एपिस डोर्सेटा*
   (स) *एपिस फ्लोरिया* (द) *एपिस इण्डिका*
6. रानी मधुमक्खी का कार्य है –

(अ) दूसरी मक्खियों पर नियन्त्रण

(ब) छत्ते की सुरक्षा करना

(स) प्रजनन करना

(द) मधु तैयार करना

7. निम्न में से मेजर कार्प की श्रेणी में नहीं आती है–

(अ) *लेबियो रोहिता* (ब) *कतला कतला*

(स) *सिरिनस मृगला* (द) *चैनोज चैनोज*

8. पशुओं का ऐन्थ्रेक्स रोग होता है –

(अ) विषाणु जनित (ब) हैल्मिन्थ जनित

(स) जीवाणु जनित (द) प्रोटोजोआ जनित

9. कुसुमी प्रकार की लाख कीट के पोषण पादप है–

(अ) खेर (ब) बबूल

(स) शीशम (द) बेर

10. ''मूगा सिल्क'' किस रेशमकीट से प्राप्त होती है –

(अ) *बॉम्बिक्स मोराई* (ब) *एन्थैरिया आसामेन्सिस*

(स) *एन्थैरिया पैफियां* (द) *एटकेस रेसिनी*

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ग्राम्यन किसे कहते हैं?
2. अण्डे उत्पादन हेतु पाली जाने वाली मुर्गियों को क्या कहते हैं?
3. कुक्कुट पालन के क्षेत्र में विश्व में भारत का कौन–सा स्थान है?
4. मछलियों के पालन एवं प्रबन्धीकरण को क्या कहते हैं?
5. मत्स्य पालन के क्षेत्र में भारत में कार्यरत किन्हीं दो अनुसंधान केन्द्रों के नाम लिखिये।
6. लाख कीट का वैज्ञानिक नाम लिखिये।
7. रेशम कीट के किसी एक रोग का नाम लिखिये।
8. रेशम कीट में पायी जाने वाली रेशम ग्रन्थियाँ किसका रूपान्तरण होती हैं?
9. मधुमक्खी पालन के दौरान कौन–कौन सी सावधानियाँ रखनी चाहिए।
10. मत्स्य बीज क्या तात्पर्य है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मुर्गियों में होने वाले विषाणुजनित रोगो का वर्णन कीजिए।
2. मधुमक्खी में सामाजिक संगठन को संक्षेप में लिखिये।
3. लाख के उपयोग लिखिये।
4. रेशम कीट की प्रमुख जातियाँ व उनके द्वारा उत्पादित रेशम का नाम दीजिए।
5. रेशम कीट में होने वाले विभिन्न रोगों का विवरण दीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मत्स्य पालन पर एक निबन्धात्मक लेख लिखिये।
2. लाख कीट की मुख्य विशेषताएँ देते हुए इसके पोषक पादपों का नाम लिखिये।
3. कुक्कुट पालन का सविस्तार विवरण दीजिये।
4. रेशमकीट पालन की विभिन्न चरणों का सविस्तार उल्लेख कीजिये।

उत्तरमाला

1.(द) 2.(अ) 3.(द) 4.(द) 5.(अ) 6.(स) 7.(द) 8.(स) 9.(द) 10.(ब)